Chapter-3

तृतीय अध्याय

गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा - वर्गीकरण

तथा शुद्ध (अथवा लौकिक) साहित्य धारा

प्राक्कथन

द्वितीय अध्याय की परिसीमा में गुजरात की हिन्दी काव्य परंपरा के मूलभूत कारणों तथा उसके स्वरूप एवं वैशिष्ट्य पर विचार कर यह स्पष्ट किया जा चुका है कि गुजरात में धार्मिक साहित्य के साथ साथ हिन्दी भाषी प्रदेशों की सामान्य परंपरा के समान ही, शास्त्रीय साहित्य तथा काव्य विशेष रूप से हिन्दी में लिखा गया है, जो हमें अन्य अहिन्दी भाषी प्रदेशों में प्राय: नहीं मिलता । आचार्य कवि गोविन्द गिल्लाभाई, इस परंपरा के अंतिम सर्वाधिक प्रमुख कवि हैं, अत: उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय प्राप्त करने से पूर्व यह आवश्यक प्रतीत होता है कि गुजरात की इस हिन्दी साहित्य धारा को स्पष्टत: समझ लिया जाय । इसलिए प्रस्तुत अध्याय में गुजरात की हिन्दी काव्य परंपरा को विभिन्न धाराओं में वर्गीकृत कर उस धारा के उद्भव एवं विकास का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जायेगा, जिसमें गोविन्द गिल्ला भाई आते हैं । इससे गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा की एक विशेष धारा का स्वरूप तो स्पष्ट हो ही जायेगा, साथ ही गोविन्द गिल्लाभाई के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के अध्ययन के लिए ऐतिहासिक भूमिका भी तैयार हो जायेगी ।

अत: प्रस्तुत अध्याय का अध्ययन क्रम निम्नलिखित रहेगा -

(१) गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा का वर्गीकरण

(२) गुजरात के हिन्दी साहित्य के वर्गीकरण की व्याख्या

(३) गुजरात का लौकिक साहित्य

(४) उपसंहार: गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा और गोविन्द गिल्लाभाई ।

१। गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा का वर्गीकरण

कृति, कर्ता, काव्य रूप, रस, शैली, प्रवृत्ति आदि के अनुसार काव्य परंपराओं का वर्गीकरण किया जा सकता है[१]। परन्तु गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा का वर्गीकरण इस परंपरा के अंतर्वर्ती प्रयोजन के आधार पर करना इसलिए अधिक समीचीन है क्योंकि किसी कृति का मूल प्रयोजन न केवल उसके स्वरूप का नियामक होता है, वरन् उस कृति के कर्ता की प्रवृत्ति का परिचायक भी होता है, साथ ही उस कृति के मूल्यांकन का भी वह एक प्रमुख आधार होता है। कृति का जहां अपना स्वतंत्र मूल्य होता है वहीं उसका एक सापेक्षिक मूल्य भी होता है। प्रयोजन इस सापेक्षिक मूल्य का प्रमुख आधार तो होता ही है,साथ ही वह उसके स्वरूप की व्याख्या करने में सहायक सिद्ध होता है। अत: गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा का वर्गीकरण अन्य किसी आधार पर न कर उसके प्रयोजन के आधार पर ही किया जायेगा। क्योंकि सम्प्रति प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य कोई विशिष्ट कृति अथवा कर्ता न होकर समूची गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा है।

गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा के अन्तर्वर्ती प्रयोजन पर विचार करते समय यह बात स्पष्टत: परिलक्षित होती है कि उसके मूल में अन्य अहिन्दी भाषी प्रान्तों की हिन्दी काव्य परम्पराओं के समान कोई एक प्रयोजन ही प्रधान नहीं है। अर्थात् महाराष्ट्र, बंगाल, पंजाब आदि प्रदेशों की हिन्दी काव्य परंपराओं के मूल में जिस प्रकार धार्मिक प्रयोजन मुख्य रूप से मिलता है, उसके विपरीत गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा के मूल में हिन्दी भाषी प्रदेशों की हिन्दी काव्य परम्परा के समान एकाधिक प्रयोजन दृष्टिगोचर होते हैं। हिन्दी के

१- तुलनीय : घनानन्द ग्रंथावली - आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० १।

इतिहासकारों ने हिन्दी साहित्य के इतिहास को विभिन्न कालों में बांट कर जो विभिन्न नामकरण किए हैं, वे प्रधान-प्रवृत्ति के अनुसार हैं, प्रयोजन के अनुसार नहीं। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "जो प्रवृत्ति एक बार जागृत हुई वह किसी न किसी रूप में निरन्तर बनी रही। किसी काल में जब कोई प्रवृत्ति प्रदान होने लगती है तब कुछ समय तक तो पूर्ववर्ती प्रमुख प्रवृत्ति के साथ साथ बढ़ती है, पर आगे बढ़ कर नूतन प्रवृत्ति प्रधान और पूर्ववर्ती प्रवृत्ति गौण हो जाती है।[१]" आशय यह कि जिस प्रकार किसी काल विशेष में एक ही प्रवृत्ति साहित्य में दृष्टिगोचर नहीं होती उसी प्रकार एक प्रयोजन भी नहीं होता। एक ही काल की एक साहित्यिक प्रवृत्ति के मूल में भी एकाधिक प्रयोजन हो सकते हैं, जिनके अनुसार उस साहित्य की मूल चेतना में अन्तर परिलक्षित होने लगता है क्योंकि प्रयोजन अनिवार्यत: प्रवृत्ति का कारण तो नहीं, परन्तु उसका नियामक अवश्य हो सकता है। गुजरात की हिन्दी काव्य परंपरा को किन्हीं प्रवृत्तियों के अनुसार कुछ काल-खंडों में नहीं बांटा जा सकता है, क्योंकि यहां एकाधिक प्रवृत्ति एक साथ समान रूप से समानान्तर विकसित होती दृष्टिगोचर होती हैं। अत: गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा यद्यपि हिन्दी भाषी प्रदेशों के समान अनेक प्रयोजन - प्रेरित है परन्तु उसे प्रवृत्ति के अनुसार विभिन्न कालखंडों में नहीं बांटा जा सकता। उसे प्रारम्भ से वर्तमान काल तक प्रयोजनानुसार कुछ धाराओं में वर्गीकृत किया जा सकता है।

प्राचीन काल में संस्कृत भाषा को छोड़ कर प्राकृत आदि सभी भाषाओं का साहित्य प्रधानत: धार्मिक है। संस्कृत का पौराणिक साहित्य भी, जो प्रधानत: धार्मिक है, इस प्रकार की धार्मिक प्रचारात्मकता से शून्य है जो हमें प्राकृत तथा अपभ्रंश के बौद्ध तथा जैन साहित्य में परिलक्षित होती है। परन्तु भारतीय

१- बिहारी - आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० १४।

साहित्य के व्यापक प्रयोजन के रूप में धार्मिकता को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। हिन्दी साहित्य का आदि एवं भक्ति काल मुख्य रूप से धर्म प्रधान है ही, रीतिकाल भी वैष्णवता से अपने आपको बिलकुल मुक्त नहीं कर सका था, परन्तु इस काल में प्रयोजन भेद के कारण उसे धार्मिक साहित्य नहीं कह सकते। इसी प्रकार आधुनिक साहित्य भी धार्मिकता से नितान्त शून्य तो नहीं परन्तु धार्मिक - प्रचारात्मकता से अत्यन्त शून्य अवश्य कहा जा सकता है। आशय यह कि भारतीय साहित्य को प्रमुख विभाजक रेखा के रूप में धार्मिक - प्रयोजन को स्वीकार किया जा सकता। गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा को भी धार्मिक प्रयोजन के आधार पर प्रथमत: दो भागों में विभक्त किया जा सकता। अर्थात् :

(१) धर्म-सापेक्ष - परंपरा
(२) लौकिक परम्परा

धर्म-सापेक्ष-परंपरा के अन्तर्गत वह समग्र साहित्य स्वीकृत किया जा सकता है जिसके मूल में किसी धार्मिक मतवाद के प्रचार की भावना या किसी धार्मिक सम्प्रदाय विशेष की दार्शनिक एवं व्यावहारिक मान्यताओं को सम्पूर्णत: या अंशत: स्वीकृत करके उनकी अप्रचारात्मक अभिव्यक्ति हो। इस प्रकार के साहित्य के अन्तर्गत किसी धर्म विशेष की सैद्धान्तिक व्याख्या करनेवाली रचना स्वीकृत नहीं की जा सकती। क्योंकि अन्य शास्त्रों के समान उनका प्रयोजन प्रचार न हो कर सिद्धान्त विवेचन ही होता है। अत: इस प्रकार के साहित्य को भी लौकिक साहित्य के अंतर्गत परिगणित करना अधिक उचित होगा। धर्म-सापेक्ष साहित्य को तदुक्त धार्मिक मतवाद या सम्प्रदाय विशेष की दार्शनिक एवं व्यावहारिक मान्यताओं तथा रूढ़ियों को हृदयंगम किए बिना सम्यक रीति से समझा नहीं जा सकता। आशय यह कि इस प्रकार के साहित्य के मूल में तदुक्त धार्मिक मतवाद का प्रचार भले ही प्रत्यक्ष प्रयोजन के रूप में न हो, और केवल धार्मिक भावाभिव्यक्ति ही उसका प्रयोजन हो, परन्तु तद्धर्मीय मान्यताओं के प्रचार का अप्रत्यक्ष प्रयोजन सम्पूर्णत: अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। और तद्धर्मीय आग्रह तो उसमें सर्वत्र

मिल ही जायेगा । साथ ही विशेष साम्प्रदायिक अनुशासन तथा व्यवहार पद्धति इस प्रकार के साहित्य में अनिवार्यत: प्रतिबिम्बित रूप में मिल जाती है ।

अत: जिस प्रकार हिन्दी भाषी प्रदेश की हिन्दी काव्य परम्परा की तथाकथित आदिकालीन जैन, बौद्ध, नाथपंथी, काव्य धाराओं तथा भक्तिकालीन वैष्णव, सूफी तथा संत आदि काव्य धाराओं को धर्म-सापेक्ष-साहित्य के अंतर्गत समाविष्ट किया जा सकता है उसी प्रकार गुजरात की हिन्दी काव्य परंपरा के अन्तर्गत जैन, वैष्णव, संत, सूफी, स्वामी नारायणी शाक्त, शैव आदि सम्प्रदायों के साहित्य को धर्म सापेक्ष साहित्य के रूप में स्वीकृत किया जा सकता है ।

लौकिक परंपरा के अन्तर्गत उस समूचे साहित्य को समाविष्ट किया जा सकता है जिसके मूल में धर्मेतर अन्य कोई प्रयोजन रहा हो । जिस प्रकार धर्म-सापेक्ष साहित्य को धार्मिक सम्प्रदायानुसार आगे उपवर्गों में बांटा जा सकता है उसी प्रकार लौकिक साहित्य को भी अन्य आधारों पर राजाश्रित साहित्य, शास्त्रीय साहित्य आदि रूपों में बांटा जा सकता है । इस प्रकार गुजरात की हिन्दी काव्य परंपरा का वर्गीकरण निम्नलिखित तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है :

गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा

धर्म सापेक्ष	लौकिक
१- शाक्त	१- शास्त्रीय साहित्य
२- शैव	२- शास्त्रीय काव्य
३- स्वामीनारायणी	
४- सूफी	
५- वैष्णव	
६- जैन	
७- संत	

२। गुजरात की हिन्दी काव्य परंपरा के वर्गीकरण की व्याख्या

गुजरात की हिन्दी काव्य परंपरा का उक्त वर्गीकरण गुजरात के हिन्दी साहित्य की स्वकीय विशेषताओं को दृष्टि में रख कर ही किया गया है। साथ ही साहित्य की शुद्धता तथा व्यापकता की परिचायक शास्त्रीय साहित्य तथा काव्य की परंपरा जो अन्य अहिन्दी भाषी प्रान्तों की तुलना में गुजरात में विशेष रूप से मिलती है, और गोविन्द गिल्लाभाई भी इसी परम्परा में आते हैं, इसलिए उसे धर्म - सापेक्ष परंपरा से भिन्न कर समझने के लिए उक्त वर्गीकरण प्रस्तावित किया गया है। उक्त वर्गीकरण का मूल आधार साहित्य है, साहित्यकार नहीं। साहित्यिक प्रवृत्ति का मूल प्रयोजन साहित्य के अध्ययन पर आधारित है, साहित्यकार की इतर प्रवृत्तियों पर नहीं। आशय यह कि गुजरात की हिन्दी काव्य परंपरा के वर्गीकरण के आधार के रूप में प्रस्तुत अध्ययन की आवश्यकता तथा गुजरात के हिन्दी साहित्य के मूलभूत प्रयोजनों को ही माना गया है। धर्म-सापेक्ष तथा लौकिक साहित्य के रूप में गुजरात के हिन्दी साहित्य को वर्गीकृत करने से गुजरात के हिन्दी साहित्य का वैविध्य सहज ही स्पष्ट हो जाता है। साथ ही लौकिक साहित्य की परंपरा का गुजरात में प्राधान्य भी सिद्ध हो जाता है। गुजरात में अनेक कवि ऐसे हुए हैं जिन्होंने एकाधिक प्रकार की रचना की है, जैसे ईसरदास बारोट जाति के चारण थे जामनगर के जाम रावल के आश्रित भी थे परन्तु उनकी सभी उपलब्ध रचनाएं विशुद्ध धार्मिक या पौराणिक ही हैं। इसी प्रकार उन्नड़ जी जो खाकर (कच्छ) के ठाकुर थे, उन्होंने धार्मिक तथा शास्त्रीय दोनों प्रकार की रचना की हैं। इसलिए यह विशेष रूप से ध्यान रखने योग्य है कि उक्त वर्गीकरण केवल रचनाओं को दृष्टि में रख कर किया गया है, रचयिताओं को नहीं।

३। गुजरात का लौकिक साहित्य

जैसा पहले कहा जा चुका है कि प्रस्तुत अध्याय में गुजरात के हिन्दी साहित्य की उसी परम्परा का अध्ययन किया जायेगा जिस परम्परा में हमारे आलोच्य कवि गोविन्द गिल्ला भाई आते हैं। श्री गोविन्द गिल्ला भाई जाति के चौहान

राजपूत थे, परन्तु उन्होंने जो कुछ हिन्दी में लिखा है उसे शुद्ध काव्य साहित्य तथा शास्त्रीय साहित्य की कोटि में रखा जा सकता है । उन्होंने किसी धार्मिक सम्प्रदाय से सम्बद्ध हो किसी प्रकार का धार्मिक प्रचारात्मक अथवा भावात्मक साहित्य नहीं लिखा है । इसलिए उनका सम्बन्ध गुजरात की लौकिक या धर्म-निरपेक्ष हिन्दी साहित्य परम्परा के साथ सहज ही माना जा सकता है अत: प्रस्तुत अध्याय में इस परम्परा का अध्ययन किया जा सकता है ।

३।१ शास्त्रीय साहित्य

शास्त्रीय साहित्य से हमारा तात्पर्य उस साहित्य से है जो विभिन्न विषयों पर किसी प्रकार की रसात्मकता के आग्रह के बिना लिखा जाता है । अर्थात् सृजनात्मक साहित्य के अतिरिक्त ज्ञान विज्ञान के किसी भी विषय पर लिखा गया साहित्य शास्त्रीय साहित्य कहा जा सकता है । आज कल जैसे ऐसे किसी विषय पर लिखा गया साहित्य तद्-विषयक विज्ञान कहलाता है, वैसे ही प्राचीन काल में भारत में उसे तद्-विषयक शास्त्र कहा जाता था । अर्थात् जैसे आज कल अर्थ, समाज, राजनीति, भाषा ,भौतकी रसायन, चिकित्सा आदि विषयों पर विभिन्न विज्ञान विकसित हुए हैं, उसी प्रकार प्राचीन काल में इन विषयों पर विभिन्न शास्त्र भारतवर्ष में मिलते हैं । आधुनिक विज्ञान के समान ही प्राचीन शास्त्रों के लेखन की एक विशेष प्रकार की मर्यादा, पद्धति तथा अनुशासन होता था । मुसलमान काल से पूर्व भारत की एक मात्र राष्ट्रभाषा संस्कृत में ही[१] इस प्रकार का शास्त्रीय साहित्य लिखा जाता था, परन्तु परवर्ती काल में यह परम्परा हिन्दी में प्रारम्भ ही नहीं हुई, वरन् विकसित भी हुई । विदेशी शासन के कारण इस परम्परा को किसी प्रकार का प्रोत्साहन नहीं मिला, फिर भी मध्यकाल का समूचा ज्ञान भंडार[२] हिन्दी में उतर आया था जो उसके व्यापक प्रचार का एक प्रमुख कारण बना ।

१- देखिए प्रथम अध्याय, पृ० ३१ ।

२- कवीश्वर दलपतराम भाग ३ - कवि न्हानालाल, पृ० १०८ ।

हिन्दी के अनेक विद्वानों ने रीतिकाल को अनेक दृष्टियों से ह्रासोन्मुख सिद्ध करने का प्रयास किया है[१]। परन्तु हिन्दी भाषा के प्रसार एवं प्रचार तथा हिन्दी साहित्य के चतुर्दिक विकास की दृष्टि से यह काल अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आदिकाल अथवा वीरगाथा काल तक हिन्दी अपनी प्राकृत परम्परा से मुक्त नहीं हो पायी थी,[२] भक्तिकाल में हिन्दी साहित्य प्रथम बार संस्कृत की ओर उन्मुख हुआ,[३] तथा रीतिकाल में आकर उसने संस्कृत प्राकृत, अपभ्रंश के साथ साथ नवागत अरबी फारसी की अनेकानेक विशेषताओं को आत्मसात कर अपनी संस्कृत जैसी सर्वाश्रयता सिद्ध की। पठान बादशाहों के समय तक हिन्दी के कवियों को दिल्ली में राजाश्रय बिलकुल प्राप्त नहीं हो पाया था,[४] परन्तु अकबर के समय में अनेकानेक हिन्दी कवियों को राजाश्रय भी मिलने लगा[५]। रीतिकाल में प्रथम बार कवि और काव्य के स्वातंत्र्य की प्रतिष्ठा हुई[६]। अकबर के समय से ही वस्तुत: हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा बन गयी थी[७]। परिणाम स्वरूप इस युग में हिन्दी में सभी प्रकार के शास्त्र लिखे जाने लगे।

हिन्दी के इतिहास ग्रन्थों में प्राय: काव्य से सम्बद्ध शास्त्रों का ही उल्लेख मिलता है, अन्य शास्त्रों का नहीं। अत: यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इस समय हिन्दी में कितने प्रकार के शास्त्र ग्रंथ लिखे जाते थे और वे किस प्रकार के होते थे। परन्तु इतना निश्चित है कि इस प्रसंग हिन्दी में राजनीति, शालिहोत्र, ज्योतिष, सामुद्रिक, योग शास्त्र, पाक शास्त्र, सुरापान, मैत्री, संगीत आदि अनेकानेक विषयों पर स्वतंत्र शास्त्रीय ग्रंथ प्रभूत मात्रा में लिखे जाते थे[८]। हिन्दी की शोध

१- द्रष्टव्य - रीतिकाव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र, पृ० १-२७।

२- बिहारी - आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० १५।

३- वही, पृ० १५।

४- मध्ययुग का संक्षिप्त इतिहास - डा० ईश्वरी प्रसाद, पृ० २५३।

५- हिन्दी रीति साहित्य - डा० भगीरथ मिश्र, पृ० ३।

६- वही, पृ० ४।

७- कचहरी की भाषा और लिपि - चन्द्रबली पाँडेय, पृ० १२।

८- हिन्दी रीति साहित्य - डा० भगीरथ मिश्र, पृ० १५।

रिपोर्टों तथा हस्तलिखित ग्रंथ संग्रहों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी में उक्त विषयों के अतिरिक्त और भी अनेकानेक विषयों पर शास्त्रीय ग्रंथ रचना की स्वस्थ परम्परा रीतिकाल की परिसीमा में ही सुविकसित हो गयी थी । प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों की पुष्पिकाओं के अवलोकन से यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि ये शास्त्रीय ग्रंथ सामान्य जनता के पठन-पाठन के लिए ही लिखे जाते थे । आशय यह कि रीतिकाल में हिन्दी में शास्त्रीय ग्रंथ रचना की जो परम्परा स्थापित एवं विकसित हुई उससे हिन्दी साहित्य की लोक साहित्यता तो दूर हो ही गयी, साथ ही हिन्दो में संस्कृत आदि शिष्ट भाषाओं जैसी गरिमा तथा औदात्य भी आ गया । परिणाम स्वरूप हिन्दी मध्यकाल में अन्य प्रान्तों में शिष्ट भाषा के रूप में स्वीकृत कर ली गयी ।[१] इतना ही नहीं वरन् नवागत मुसलमान शासकों ने हिन्दी के राष्ट्रीय महत्व को पहिचाना तथा अनेकानेक हिन्दी ग्रंथों का फारसी में तथा कुछ फारसी ग्रंथों का हिन्दी में अनुवाद किया । अमीर खुसरो प्रथम मुसलमान माने जा सकते हैं जिन्होंने इस प्रकार का कार्य खालिकबारी नामक हिन्दी फारसी कोष की रचना कर सम्पन्न किया ।[२] बादशाह शाहजहां हिन्दी को सब प्रकार से सम्पन्न देखना चाहता था इसलिए उसने हुक्म दिया था कि युनानी और हिन्दुस्तानी मुनंज्जिम मिल कर हिन्दुस्तानी जबान में 'जीच शाहजहानी 'का तरजुमा करें ।[३] कट्टर औरंगजेब ने भी हिन्दी का जो उपकार किया है उसके विषय में मौलवी शिबली नुमानी ने जो लिखा है उसका निष्कर्ष है कि 'ब्रजभाषा की जिस कदर इसके जमाने में तरक्की हुई, मुसलमानों ने जिस कदर इसके जमाने में हिन्दी किताबों के तरजुमे किए और खुद जिस कदर ब्रजभाषा में नजम लिखी, किसो जमाने में इस कदर हिन्दी की तरफ

१- गुजराती भाषा नी उत्पत्ति (वसंत मासिक) हरगोविन्द द्वारकादास कांटावाला, आश्विन, सं० १९७०, पृ० २५ ।

२- हैदराबाद मे हिन्दी - श्री मधुसूदन चतुर्वेदी, पृ० २२ ।

३- वही, पृ० २४ ।

इत्तेफात नहीं जाहिर किया गया था[१]। औरंगजेब के समय में ही मिर्जा खान ने तुहफत-उल-हिन्द में हिन्दी की शास्त्रीय परम्परा को फारसी में उतारने का सफल प्रयास तो किया ही, साथ ही ब्रजभाषा का अत्यन्त वैज्ञानिक व्याकरण लिख कर हिन्दी के शास्त्रीय साहित्य के द्वार फारसी के ज्ञाताओं के लिए खोल दिए[२]। मुहम्मद शाह के समय में भी अनेक भाषाओं से हिन्दी में अनेक अनुवाद किए गये[३]।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि रीतिकाल की परिसीमा में हिन्दी भाषा तथा साहित्य संस्कृत जैसी प्राचीन भारतीय राष्ट्रभाषा तथा अरबी फारसी जैसी समकालीन राज्य भाषाओं के सम्पर्क में आ कर दिन प्रति दिन परिनिष्ठित भाषा के रूप में सुस्थिर होती गयी और उसका साहित्य केवल सृजनात्मक न रह कर तत्कालीन सभी ज्ञान विज्ञान के विषयों के लेखन तथा पठन पाठन का सर्वजनीन आधार बन सका। मुगल सम्राटों तथा तत्कालीन अन्य राजा, महाराजा, नवाब तथा सरदारों के प्रोत्साहन से हिन्दी में शास्त्रीय साहित्य की परम्परा अनुवाद, छायानुवाद, तथा मौलिक रूप से क्रमश: विकसित होती गयी[४]। हिन्दी के अखिल भारतीय प्रचार के मूल में हिन्दी का शास्त्रीय साहित्य भी कारण रूप माना जा सकता है, क्योंकि एक दो द्रविड़ भाषाओं जैसे तामिल तथा तेलगू को छोड़ कर अन्य भारतीय भाषाओं में इस प्रकार का साहित्य आधुनिक काल से पूर्व नहीं मिलता।

१- मुगल बादशाहों की हिंदी पृ० ३६-४० से उद्धृत हैदराबाद में हिंदी, पृ० २५ पर।

२- देखिए भूमिका मिरजाखां का ग्रामर आफ ब्रजभाषा- सं० एम० जियाउद्दीन।

३- हैदराबाद में हिंदी - श्री मधुसूदन चतुर्वेदी, पृ० ३६।

४- तुलनीय है : हिन्दी रीति साहित्य - डा० भगीरथ मिश्र, पृ० ३, ४।

हिन्दी में लिखे गये साहित्य सम्बन्धी शास्त्रीय ग्रंथों को छोड़ कर अन्य शास्त्रों से सम्बद्ध साहित्य न तो प्रकाश में ही आया है और न ही किसी विद्वान ने उनके विषय में सुसम्बद्ध रूप से लिखा है । अत: उस साहित्य के विषय में विशेष रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता । परन्तु काव्यशास्त्र के विषय में भी जो कुछ लिखा गया है वह अत्यधिक विश्वसनीय नहीं माना जा सकता । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीति ग्रंथों को संस्कृत साहित्य शास्त्र के एक भाग की उद्धरणी मान कर[१] हिन्दी रीतिकाल को उसके ऐतिहासिक परिपार्श्व से विलग कर देखने का प्रयास किया है । परिणाम स्वरूप न तो हिन्दी के रीतिकाल का समुचित मूल्यांकन हो पाया है और न उसके शास्त्रीय साहित्य की परम्परा यथोचित रूप में प्रकाश में आ सकी है । रीतिकाल की परिसीमा में लिखा गया संस्कृत का शास्त्रीय साहित्य भी किसी प्रकार हिन्दी के शास्त्रीय साहित्य से मौलिकता की दृष्टि से श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता । पंडित राज जगन्नाथ के अपवाद के साथ इस काल में लिखा गया संस्कृत का शास्त्रीय साहित्य हिन्दी के शास्त्रीय साहित्य की तुलना में श्रेष्ठ सिद्ध नहीं किया जा सकता । इस युग का अधिकांश संस्कृत का शास्त्रीय साहित्य "बालानां सुखबोधाय" ही लिखा गया था । केशवदास की यह उक्ति कि "समुझै बाला बालकहु वर्णन पंथ अगाध"[२], यही सिद्ध करती है कि हिन्दी का शास्त्रीय साहित्य उस युग में संस्कृत के समानान्तर ही विकसित हो रहा था । इतिहास के प्रवाह को न संस्कृत बदल सकती थी न हिन्दी । वस्तुत: यह युग शास्त्रीय धरातल पर नवीन सिद्धान्तोद्भावना का युग नहीं था, सिद्धान्तों के संरक्षण का युग था । समूचे रीतिकाल में इसीलिए सर्वत्र हमें प्राचीन का संरक्षण या संरक्षित का प्रसाधन या अलंकरण ही दृष्टिगोचर होता है । आशय यह कि इतिहास की परिसीमा में हिन्दी के शास्त्रीय साहित्य को देखा जाय तो वह

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २२६ ।

२- कविप्रिया - केशवदास, तृतीय प्रभाव छं० १ ।

तत्कालीन संस्कृत के शास्त्रीय साहित्य से हीन कदापि सिद्ध नहीं किया जा सकता। सृजनात्मक साहित्य की दृष्टि से तो हिन्दी उस समय संस्कृत आदि सभी शिष्ट भाषाओं से श्रेष्ठ सिद्ध की जा सकती है। केशवदास की यह उक्ति कि :

भाषा बोल न जानहीं जिनके कुल के दास।
भाषा कवि सो मंदमति तेहि कुल केशवदास[१]।।

केशव के संस्कृत प्रेम से अधिक हिन्दी की प्रतियोगिता में संस्कृत की पराजय को प्रमाण माना जा सकता है। आशय यह कि संस्कृत के अत्यधिक आग्रह तथा हिन्दी की हीनता की भावना से मुक्त होकर यदि शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया जाय तो हिन्दी रीति आचार्यों की अनेक मौलिक उद्भावनाओं के साथ साथ हिन्दी के इतर शास्त्रीय साहित्य के साथ न्याय हो सकता है तथा वह प्रकाश में भी आ सकता है।

हिन्दी भाषी प्रदेश के समान गुजरात में भी हिन्दी में शास्त्रीय साहित्य की परंपरा सृजनात्मक साहित्य की परंपरा के प्रारंभ हो जाने के पश्चात ही मिलती है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि गुजरात में हिन्दी साहित्य की परंपरा १४ वीं शताब्दी से मिलने लगती है[२] परन्तु शास्त्रीय साहित्य की परंपरा १६ वीं शताब्दी से पूर्व नहीं जाती[३]। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकाल का प्रारंभ १७ वीं शताब्दी से माना है, परन्तु आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र के अनुसार रीतिकाल (शृंगार काल) का प्रारंभ १६ वीं शताब्दी से माने[४] तो हम गुजरात में भी रीतिकाल (शास्त्रीय साहित्य और काव्य का युग) इसी समय से मान सकते हैं। अहमदाबाद के सूफी मुसलमान कवि हजरत खूब मुहम्मद चिश्ती ने सन् १५३६ में भावभेद नामक एक अलंकार ग्रंथ लिखा है, जिसे जब तक अन्य शास्त्रीय

१- कविप्रिया - केशवदास, द्वितीय प्रभाव, छं० १७।

२- देखिए, द्वितीय अध्याय, पृ०६४।

३- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २२६।

४- घनानंद ग्रंथावली (भूमिका) - आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ०२२।

ग्रंथ न मिले तब तक गुजरात के शास्त्रीय हिन्दी साहित्य की प्रथम रचना मान सकते हैं। गुजरात में हिन्दी के शास्त्रीय साहित्य की परंपरा इस प्रकार १६ वीं शताब्दी में प्रारंभ हो कर २० वीं शताब्दी के कवियों तक अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है, जिसमें अनेक कवियों ने अनेक विषयों पर शास्त्रीय ग्रंथ लिखे हैं। २०वीं शताब्दी में हिन्दी भाषी प्रदेश के समान गुजरात में भी हिन्दी की प्राचीन शास्त्रीय साहित्य की परंपरा आधुनिक वैज्ञानिक साहित्य की परंपरा में परिवर्तित हो गयी है। स्वामी दयानन्द सरस्वती से यह मोड़ अधिक स्पष्ट होने लगता है तथा पंडित सुखलाल जी की लेखनी से पूर्णत: आधुनिक रूप में प्रतिष्ठापित हो जाता है।

गुजरात के शास्त्रीय साहित्य का परिचय प्राप्त करने से पूर्व यह आवश्यक प्रतीत होता है कि उसके कारणों पर संक्षेप में विचार कर लिया जाय। वस्तुत: जिन कारणों से गुजरात में विशेष रूप से व्यापक तथा समृद्ध हिन्दी काव्य परम्परा विकसित हुई उन्हीं कारणों को गुजरात में हिन्दी के शास्त्रीय साहित्य के विकास का मूल कारण माना जा सकता है,[१] परन्तु जो कारण इस परम्परा के विकास में विशेष रूप से सहायक सिद्ध हुए हैं उनका उल्लेख यहां किया जा सकता है।

संस्कृत की स्थानापन्न भाषा होने के कारण तथा मध्यकालीन भारतीय ज्ञान विज्ञान की व्यापक वाहिका होने के कारण, हिन्दी को गुजरात में न केवल शिष्ट भाषा के रूप में स्वीकृत कर लिया गया था, वरन् वह यहां बहुत कुछ शिक्षा के माध्यम के रूप में भी प्रचलित थी। श्री डाह्याभाई पीताम्बरदास देरासरी ने स्पष्ट लिखा है कि इस भाषा को न जानने वाला व्यक्ति गवार ही गिना जाता था।[२] आधुनिक गुजराती के प्रसिद्ध कवि न्हानालाल ने भी लिखा है कि यदि किसी महत्वाकांक्षी को भारत विख्यात महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखना होता था तो वह हिन्दी में ही लिखता था।[३] इसके अतिरिक्त गुजराती भाषा में शास्त्रीय

१- देखिए, द्वितीय अध्याय, पृ० ४६-४८।

२- गुजराती और हिन्दी साहित्य मां आपेलो फाड़ो - डाह्या भाई पीताम्बर देरासरी, पृ० २।

३- कवीश्वर दलपतराम - न्हानालाल, भाग ३, पृ० १०८।

शास्त्रीय साहित्य के अभाव के कारण भी गुजरात में हिंदी का शास्त्रीय साहित्य अधिक प्रचलित हो गया । सामान्य जनता में संस्कृत भाषा का ज्ञान मध्यकाल में इतना प्रचलित नहीं था कि सभी उस भाषा के माध्यम से शास्त्रीय ज्ञान पा सकें । इसीलिए हिंदी भाषा में शास्त्रीय साहित्य के लेखन की परंपरा प्रारंभ हुई थी जिससे केशवदास के शब्दों में "समुझै बाला बालकहु वर्णन पंथ अगाध" जटिल विषय को सरल रीति से जन सामान्य भी समझ सके । गोविन्द गिल्ला भाई ने हिन्दी में जो शास्त्रीय ग्रंथ लिखे हैं उसका एक कारण यह भी था कि गुजराती में शास्त्रीय ग्रंथ थे ही नहीं । उन्होंने लिखा है कि "तब एक जैन साधु पानाचंद जी की पास जायके कुछ पिंगल और नाममाला में नन्ददास कृत मान मंजरी और अनेकार्थ पढ़े । उनमें कुछ कविता करने में प्रवेश हुआ । तब जैसी तैसी कविता भी करने लगा, और प्रथम गुजराती भाषा में विश्वदर्पण, कुधारा पर सुधारा की चढ़ाई और व्यभिचार निषेध बावनी, यह तीन ग्रंथ बनायके छपवाये । वह देखके कितनेक पंडित मित्रों ने कहा कि तुम्हारी बुद्धि और तर्कशक्ति अच्छी है । इसलिए तुम काव्यशास्त्र के लक्षण ग्रंथ पढके कविता करोगे तो बहुत उत्तम और मनोरंजक होयगी, यह सुनके हम काव्यशास्त्र के लक्षण ग्रंथ ढुंढने लगे, परंतु वह गुजराती भाषा में न होने से हमको मिले नहीं, परंतु संस्कृत और हिन्दी भाषा में वह हमने देखे --- भाषा पढ़ना शुरू किया आदि आदि"।[१] श्री गोविन्द गिल्लाभाई के उक्त कथन से दोनों बातें स्पष्ट हो जाती हैं कि उनके समय में शिक्षा का माध्यम आंशिक रूप से हिन्दी ही थी, साथ ही गुजराती भाषा में काव्यशास्त्र के ग्रंथों के न होने से उन्हें हिन्दी और संस्कृत भाषा का सहारा लेना पड़ा था । गुजराती भाषा में काव्यशास्त्र के अतिरिक्त अन्य शास्त्रों पर आधुनिक काल से पूर्व ग्रंथ नहीं मिलते । आशय यह कि गुजराती में शास्त्रीय साहित्य के अभाव के कारण गुजरात में हिंदी के शास्त्रीय साहित्य का विशेष प्रचार हुआ था तथा उसी की प्रेरणा तथा अनुकरण के कारण गुजरात में हिन्दी में प्रभुत शास्त्रीय साहित्य भी लिखा गया ।

१- गोविन्द ग्रंथमाला, प्रथम भाग (उपोद्घात) : गोविन्द गिल्लाभाई, पृ० २० ।

इसी प्रकार गुजरात के राज दरबारों में, राजस्थान तथा दिल्ली के दरबारों के समान ही हिन्दी के विशेष स्थान के कारण गुजरात के हिन्दी कवियों द्वारा शास्त्रीय काव्य के साथ साथ शास्त्रीय साहित्य भी लिखा गया । क्योंकि राज-दरबारों में लोक साहित्य को विशेष सम्मान कभी नहीं मिला । हिन्दी के राजाश्रित कवियों ने गुजरात में जो शास्त्रीय साहित्य लिखा है वह विशेष रूप से काव्य शास्त्र, कोष, छंद तथा राजनीति से सम्बद्ध है । इसके अतिरिक्त अनेक ऐसे कवियों ने जो राजाश्रित नहीं थे, उक्त विषयों के अतिरिक्त अन्य विषयों पर भी शास्त्रीय ग्रंथ लिखे हैं । अनेक राजाओं ने भी संगीत आदि विषयों पर शास्त्रीय ग्रंथ लिखे हैं ।

गुजराती भाषा में शास्त्रीय साहित्य के अभाव, हिन्दी के गुजरात में संस्कृत आदि शिष्ट भाषाओं के समान स्थापित हो जाने तथा उसके शास्त्रीय साहित्य का गुजरात में प्रचार और हिन्दी कवियों को गुजरात तथा गुजरात के बाहर राजाश्रय की प्राप्ति के कारण गुजरात में जो शास्त्रीय साहित्य लेखन की परंपरा सुथापित हुई उसे भुज की ब्रजभाषा पाठशाला की स्थापना से विशेष वेग तथा स्थायित्व मिला। अत: उसे भी गुजरात की हिन्दी के शास्त्रीय साहित्य की परंपरा के विकास में एक प्रमुख कारण माना जा सकता है । आशय यह कि कच्छ के महाराव लखपतसिंह द्वारा १८ वीं शताब्दी के मध्य में भुज में ब्रजभाषा पाठशाला की स्थापना से हिन्दी के काव्य शास्त्र की तो विधिवत अध्यापन की व्यवस्था हो ही गयी साथ ही अन्य शास्त्रों के हिन्दी में लेखन के लिए यहां से सदा प्रेरणा गुजरात के हिन्दी कवियों को प्राप्त होती रही । महाराव लखपत सिंह स्वयं महान् शास्त्रकार तथा शास्त्रीय शैली के हिन्दी कवि थे तथा उनके आश्रय में अनेककलाविद् विद्वानों तथा कवियों को अपनी प्रतिभा को विकसित करने का सुयोग भी प्राप्त था ।[१] महाराव लखपतसिंह द्वारा स्थापित यह

१- भुज (कच्छ) की ब्रजभाषा पाठशाला - कुंवर चन्द्रप्रकाश सिंह, पृ० ११ ।

परंपरा बहुत समय तक कच्छ में बनी रही तथा ब्रजभाषा पाठशाला तो १६४७ तक अपना कार्य करती रही[१]।

आशय यह कि गुजरात में उक्त कारणों से हिन्दी के शास्त्रीय साहित्य का न केवल प्रसार एवं प्रचार हुआ, वरन् गुजरात के अनेक कवियों तथा आचार्यों ने हिन्दी की इस परंपरा को विशेष रूप से विकसित किया है, जो समस्त अहिन्दी भाषी प्रान्तों में अकेली है।

अद्यावधि शोधों के परिणाम स्वरूप जो सामग्री प्रकाश में आयी है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि सन् १५३६ के आसपास अहमदाबाद के सूफी कवि हजरत खूब मुहम्मद चिश्ती ने 'भावभेद' नामक अलंकारशास्त्र का ग्रंथ लिख कर गुजरात में शास्त्रीय साहित्य लेखन की परंपरा प्रारंभ की। १६ वीं शताब्दी की कोई अन्य शास्त्रीय रचना अब तक प्रकाश में नहीं आयी है। १७ वीं शताब्दी में हमें तीन चार ऐसे कवि गुजरात में मिलते हैं जिन्होंने शास्त्रीय विषयों पर रचना की हैं परंतु उनमें से कोई भी काव्य शास्त्र से सम्बद्ध नहीं है। गुजरात के कवि श्रीपति ने संस्कृत के माधव निदान नामक वैद्यक ग्रंथ का हिन्दी में अनुवाद अपने आश्रयदाता के नाम पर हिम्मत प्रकाश नामक रचना में किया। ये सैयद हिम्मत खां के आश्रित थे तथा इनका समय १६७३ के आसपास माना गया है। इसी प्रकार १७वीं शताब्दी में ही गुजरात के कवि श्री कृष्णराम भट्ट, जो जयपुर नरेश के आश्रित थे, सिद्ध भेषज मणिमाला नामक सुंदर वैद्यका ग्रंथ लिखा है, इनके बनाये हुए अन्य ग्रंथ भी प्रसिद्ध हैं जैसे जयपुर विलास, होली महोत्सव, सार शतक, पलाण्डु शतक आदि। अहमदाबाद के नागर कवि श्री केवलराम जी ने गुजरात के इतिहास से सम्बद्ध बाबी विलास नामक रचना की है जो इनके पुत्र श्री उत्तमराम जी द्वारा पूर्ण की गयी है। श्री केवलराम जी को जूनागढ़ तथा लूनावाणा में राजाश्रय प्राप्त था। आशय यह कि १७वीं शताब्दी में लिखा गया जो हिन्दी का शास्त्रीय साहित्य मिलता है उसका सम्बन्ध काव्यशास्त्र से नहीं है।

१- भुज (कच्छ) की ब्रजभाषा पाठशाला - कुंवर चंद्रप्रकाश सिंह, पृ० ५०-५२।

परंतु १८ वीं शताब्दी में जो शास्त्रीय साहित्य गुजरात में हिन्दी में लिखा गया है वह न केवल वैविध्य पूर्ण है वरन् उत्तम कोटि का भी है। इस शताब्दी में करीब पंद्रह ऐसे कवियों का पता चला है जिन्होंने काव्यशास्त्र, अलंकार शास्त्र, छंद शास्त्र, कोष, व्याकरण संगीत आदि विषयों पर शास्त्रीय शैली में सुन्दर रचना की है। इस युग के प्रधान आचार्य महाराव लखपत सिंह के आश्रित तथा ब्रजभाषा पाठशाला के प्रथम आचार्य जैन कवि श्री कनक कुशल तथा कुंवर कुशल माने जा सकते हैं। कनक कुशल ने लखपत मंजरी नाममाला नामक हिन्दी कोष लिखा है तथा सुन्दर शृंगार की रस दीपिका नामक टीका लिखी है। कुंवर कुशल ने लखपत जस सिन्धु नामक काव्य शास्त्र का सवार्तिक ऐसा गृंथ लिखा है जो प्रकाशित होने पर हिन्दी काव्य शास्त्र के इतिहास में एक महत्वपूर्ण गृंथ माना जायेगा। इसके अतिरिक्त पारसति नाममाला नामक हिन्दी पारसी का अद्भुत कोष लिखा है तथा लखपत पिंगल और गोहड पिंगल नामक दो छंदशास्त्र के गृंथ लिखे हैं। महाराव लखपतसिंह स्वयं शास्त्रकार आचार्य थे उनके लिखे हुए निम्नलिखित गृंथ प्रसिद्ध हैं, लखपत मान मंजरी, सुर तरंगिणी, मृदंग महीरा, राग सागर, लखपत भक्ति विलास, शिव विवाह। शिव विवाह को छोड़ कर शेष सभी गृंथ शास्त्रीय रचना है। महाराव लखपत सिंह के ही आश्रित कवि भारमल ने ज्योतिष जड़ाव नामक ज्योतिष का गृंथ लिखा है तथा भाषा में ब्रह्मांड पुराण की रचना की है। इन्हीं के साथी तथा महाराव लखपत सिंह के आश्रित चारण कवि हमीर जो रतनू ने भी कई शास्त्रीय रचना की हैं। यादव वंश वर्णन नामक रचना ऐतिहासिक है तथा पिंगल प्रकार, और लखपत पिंगल नामक रचनाएं छंद शास्त्र से सम्बद्ध हैं। इन्होंने हमीर नाम माला नामक एक हिन्दी कोष भी लिखा है।

उक्त शास्त्रकार कवियों के अतिरिक्त इस शताब्दी में काशी निवासी गुजराती कवि श्री हरिनाथ जो ने अलंकार दर्पण नामक अलंकार शास्त्र पर एक सुन्दर गृंथ लिखा है। कच्छ के कवि विशन जी भवान जी ने गोविन्ददास हरिनाममाला नामक कोष - गृंथ तथा वजमाल जी मेहडू ने जामनगर के राजाश्रय में अमरकोष

का हिन्दी अनुवाद अमरकोष भाषा के नाम से किया है। वजमाल जी महेडू ने विभा विलास नामक प्रबन्ध काव्य लिखा है जिसमें अनेक ऐतिहासिक तथ्यों का आख्यान तथा अनेक शास्त्रीय विषयों का विवेचन है। गुजरात में ऐसे अनेक प्रबन्ध काव्य लिखे गये हैं जिनमें प्रबन्ध कथा के बीच में ही अनेक शास्त्रों का आख्यान आ जाता है। प्रवीण सागर नामक प्रबन्ध काव्य भी इसी प्रकार का है, जिसे राजकोट के महाराज कुमार श्री महेरामण सिंह ने अपने सात मित्रों की सहायता से रचा है। प्रवीण सागर में आखेट, राजनीति, ज्योतिष, पुराण विद्या, सैन्य सज्जा, युद्ध रचना आदि अनेक विषयों का शास्त्रीय विवेचन है। वजमाल जी मेहडू का विभा विलास भी इसी प्रकार का प्रबन्ध काव्य है। सन् १७१३ में रत्नजित नामक लेखक ने ब्रजभाषा का व्याकरण लिखा है, इनके लिखे भाषा शब्द सिन्धु तथा भाषा धातु माला नामक रचनाओं का भी पता चला है। रत्न जित की यह रचना अहिन्दी भाषी प्रदेश में लिखी गयी प्रथम रचना है तथा मिर्जा खान की प्रसिद्ध व्रजभाषा व्याकरण के बाद भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना है। सन् १७६६ के आस पास अहमदाबाद के कवि महासिंह सेवक ने छंदसार पिंगल तथा छंद शृंगार नामक दो शास्त्रीय रचनाएँ लिखी हैं, इसी प्रकार खाखर (कच्छ) के निवासी श्री बीसाजी ने एक सामुद्रिक ग्रंथ का हिन्दी में अनुवाद किया है, इनका समय सन् १७७१ माना जाता है। राजकोट के महाराज कुमार श्री महेरामण सिंह के आश्रित तथा बढ़वान निवासी श्री पिंगलशी गढ़वी ने वैकुंठ पिंगल नाम से एक शास्त्रीय रचना की है, ये प्रवीण सागर के सहकर्ताओं में से एक हैं। हिन्दी के इतिहास ग्रन्थों में सुविख्यात दलपतराय बंशीधर, जो उदयपुर के राणा के आश्रित थे, मूलत: अहमदाबाद के निवासी गुजराती कवि ही थे जिन्होंने अलंकार रत्नाकर तथा पिंगल भाषा नामक दो शास्त्रीय रचनायें की हैं। १७६० में अहमदाबाद के एक दलपत कवि का पता चला है जिन्होंने दलपत विलास नामक रचना में कुवलयानन्द का अनुवाद किया है। गुजरात के प्रसिद्ध पुष्टि मार्गी कवि दयाराम भी इसी शताब्दी में हुए हैं जिन्होंने अनेक पुष्टि-सम्प्रदाय सम्बन्धी शास्त्रीय रचनायें तो की ही हैं, साथ ही स्वयं बड़े संगीतज्ञ थे अतः कई

शास्त्रीय रचना संगीत विषयक की हैं जैसे ताल माला राग माला आदि । सन् १७५७ में आमोद के चारण कवि जसुराज ने राजनीति पर सुन्दर रचना लिखी है जो गुजरात में बड़ी ही प्रसिद्ध रचना मानी जाती है । आशय यह कि १८वीं शताब्दी में अनेक ऐसे कवि गुजरात में हुए हैं जिन्होंने अनेक शास्त्रीय विषयों पर सुन्दर ग्रंथ लिखे हैं । शास्त्रीय साहित्य की दृष्टि से यह शताब्दी अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जा सकती है ।

१९वीं शताब्दी में गुजरात की हिन्दी काव्य परंपरा का सामान्यत: खूब विकास हुआ है परन्तु शास्त्रीय विषयों पर उतना साहित्य इस शताब्दी में नहीं लिखा गया, जितना इस से पूर्व लिखा गया है । इस शताब्दी में जूनागढ़ के नवाब बहादुर खान के आश्रित कवि आदित राम जी द्वारा लिखित संगीतादित्य ग्रंथ संगीत शास्त्र का उत्तम ग्रंथ माना जाता है । इस ग्रंथ में कवि ने अपने विषय को स्पष्ट करने के लिए गद्य का भी प्रयोग किया है । इसी समय के आसपास कवि केवलराम के ऐतिहासिक ग्रंथ बाबी विलास की पूर्ति उनके पुत्र उत्तमराम जी ने की तथा सन् १८५० के आसपास खाकर (कच्छ) के ठाकुर कवि उन्नड़ जी ने ऋतु विज्ञान पर अपना प्रसिद्ध ग्रंथ मेघाडंबर लिखा है । कच्छ के बन्दरगाह से व्यापार करने वाले व्यापारियों के लिए इस ग्रंथ का बड़ा महत्व था । इन्होंने भागवत पिंगल नामक एक छंदशास्त्र पर भी ग्रंथ लिखा है। इसके अतिरिक्त इनके लिखे हुए खुशबू कुमारी, भागवत गीता, उन्नड़ बावनी आदि चालीस ग्रंथ कहे जाते हैं, जिनकी शैली शुद्ध शास्त्रीय ही है । सन् १८८८ के आसपास भुज के चारण कवि केशव अयाची ने अलंकार शास्त्र पर शब्द-विभूषण नामक ग्रंथ लिखा है । १८३० में जीवनलाल नागर का लिखा हुआ संगीत भाष्य ग्रंथ संगीत का अच्छा ग्रंथ माना जाता है । इसी समय के लगभग राजकोट के राजाश्रित कवि रणमल अदाभाई ने प्रवीण सागर की प्रथम पूर्ति की, उसकी टीका लिखी तथा रणपिंगल और चित्रकाव्य नामक शास्त्रीय रचना की है । इन्होंने सुन्दर शृंगार की भी टीका लिखी है । इसके अतिरिक्त इस शताब्दी में दलपतराम, नाथूराम सुन्दरजी शुक्ल, पाताभाई, रणछोड भाई उदयराम, हीराचन्द कान जी, आदि कई कवि हुए हैं जिन्होंने

जिन्होंनेपिंगल, अलंकार, रस, संगीत आदि अनेक शास्त्रीय विषयों पर रचना की हैं।

२० वीं शताब्दी में गुजराती भाषा में इस प्रकार का शास्त्रीय साहित्य लिखा जाना प्रारम्भ हो जाता हैं, इसलिए हिन्दी की शास्त्रीय साहित्य की परम्परा क्षीण होती जाती हैं परंतु एक दम समाप्त नहीं होती। २० वीं शताब्दी में भी हमें गोपाल जादेव हर्षदराय आदि प्राचीन परिपाटी तथा पंडित सुखलाल जी आदि आधुनिक शैली के हिन्दी के लेखक मिल जाते हैं जिन्होंने शास्त्रीय तथा वैज्ञानिक साहित्य हिन्दी में लिखा है। आशय यह कि जिस प्रकार हिन्दी भाषी प्रदेशों में शास्त्रीय साहित्य लेखन की परंपरा वर्तमान युग में वैज्ञानिक लेखन की शैली में परिवर्तित हो विकसित हो रही है उसी प्रकार गुजरात में भी हिन्दी की प्राचीन शास्त्रीय साहित्य लेखन की परंपरा शनैः शनैः नवीन रूप ले रही है। संक्रांति काल होने के साथ साथ गुजराती भाषा के सभी क्षेत्रों में स्थापित हो जाने के कारण हिन्दी के शास्त्रीय साहित्य की परंपरा वैज्ञानिक साहित्य की परंपरा के रूप में अभी तक उस रूप में विकसित नहीं हो पायी हैं जिस रूप में वह हिन्दी भाषी क्षेत्र में है।

गुजरात के हिन्दी के शास्त्रीय साहित्य की उक्त परम्परा के संदर्भ में हिन्दी के सुप्रसिद्ध आद्य गद्यकार श्री लल्लूलाल जी तथा आर्य समाज के संस्थापक श्री दयानन्द सरस्वती का नाम नहीं भुलायाजा सकता, जिन्होंने हिन्दी में अनेक ऐसे ग्रंथ लिखे हैं, जिन्हें इस परंपरा के अंतर्गत स्वीकार किया जा सकता है। गुजरात के अनेक कवियों ने हिन्दी में धार्मिक दार्शनिक तथा पौराणिक विषयों पर शास्त्रीय शैली में रचना की है। प्रणामी संप्रदाय के संस्थापक संत प्राणनाथ की अनेक रचनायें इसी कोटि में आती हैं, इसी प्रकार स्वामी नारायणी संप्रदाय के प्रसिद्ध कवि ब्रह्मानन्द, प्रेमानन्द तथा पुष्टि मार्गी कवि दयाराम आदि कवियों की अनेक रचना भी इसी प्रकार की हैं। गुजरात की हिन्दी की शास्त्रीय साहित्य की परम्परा को निम्नलिखित तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है :

कवि का नाम	शास्त्रीय ग्रंथ का नाम	शास्त्र का नाम
आदितराम जी	संगीतादित्य	संगीत
आदितराम केवलराम	मान महोत्सव	,,
	रागमाला	,,
ईसरदास बारोट	गरुड़ पुराण	पुराण
	सभा पर्व	,,
उत्तमराम जी	बाबी विलास	ऐतिहासिक
उदयराम बारहट	अनेकार्थ एकाक्षरी नाममाला	कोष
उन्नड़ जी	मेघाडम्बर	ऋतु विज्ञान
	भागवत पिंगल	छंद
	महाभारत (तीन पर्व का अनुवाद)	
कनक कुशल	लखपत मंजरी नाममाला	कोष
	रस दीपिका (सुंदर शृंगार की टीका)	
कल्याण	छंद प्रभाकर	छंद
	रस चंद्रिका	रस
कुवर कुशल	लखपत जस सिन्धु	काव्य
	लखपत मंजरी नाममाला	कोष
	पारसति नाममाला	,,
	लखपत पिंगल	छंद
	गौहड़ पिंगल	,,
कुशलधीर उपाध्याय	रसिकप्रिया का गुजराती अनुवाद	
कृष्णाराम भट्ट	सिद्ध भेषजमणिमाला	वैद्यक
केवलराम जी	बाबी विलास	ऐतिहासिक

केशव अयाची	शब्द विभूषण	अलंकार
गोपाल जादेव	शब्द विभूषण	अलंकार
	अलंकार निधि	,,
	छंद विधि गति चंद्रिका	छंद
जसुराम [illegible]	राजनीति	राजनीति
जयकृष्ण	रूपदीप पिंगल	छंद
जीवनलाल	संगीत भाष्य	संगीत
दयानन्द सरस्वती	धर्म और दर्शन संबंधी अनेक ग्रंथ	
दयाराम	पिंगलसार	छंद
	तालमाला	संगीत
	रागमाला	,,
	अनेक पुष्टि मार्गीय धार्मिक रचना	
दलपत	दलपत विलास	अलंकार
दलपतराय	अलंकार रत्नाकर	,,
	पिंगलभाषा	छंद
दलपतराम	भाषा किरीट	काव्य
देवीदास	राजनीति	राजनीति
नाथूराम सुन्दरजी	संगीत तत्त्व विनोद	संगीत
नारायण कवि	भक्तमाल की टीका	
नारायण हेमचन्द्र	अनेक हिन्दी ग्रंथों का अनुवाद	
प्राणनाथ	अनेक धार्मिक ग्रंथ	
परशुराम गंगाधर दीक्षित	ज्योतिष सार	ज्योतिष
	षट्दर्शन पड्वो	दर्शन
पिंगलशी गढवी	वैकुंठ पिंगल	छंद
पीताम्बरजी	पंचदशी तथा उपनिषदों की टीका	
ब्रह्मानन्द स्वामी	अनेक धार्मिक ग्रंथ	

बोसाजी	एक सामुद्रिक ग्रंथ का अनुवाद	
बुधराव	काव्य दिवाकर	काव्य
	अनेकार्थ कोष	कोष
बेनीदास	साहित्य सिन्धु	काव्य
भारमल	ज्योतिष जड़ाव	ज्योतिष
	ब्रह्मांड पुराण	पुराण
महासिंह सेवक	छंदसार पिंगल	छंद
भावल जी जीवाभाई	वीर विनोद की गुजराती टीका	
रणछोड भाई उदयराम	रसप्रकाश	रस
	अलंकार प्रकाश	अलंकार
रणमल अदाभाई	रणपिंगल	छंद
	प्रवीण सागर की टीका	
	सुन्दर शृंगार की टीका	
रत्नजित	ब्रजभाषा व्याकरण	व्याकरण
	भाषा शब्द सिन्धु	
	भाषा भातुमाला	,,
रामचन्द्र मोढ	रसपिंगल	छंद
रंगीलदास	नाममाला	कोष
लखपतसिंह	लखपत शृंगार	काव्य
	लखपतमान मंजरी	कोष
	सुरतरंगिणी	संगीत
	मृदंग महीरा	संगीत
	राग सागर	,,

वजमाल जी मेहडू	अमरकोष भाषा	कोष
विशनजी भवानजी	गोविन्ददास हरिनाममाला	,,
श्रीपति	हिम्मत प्रकाश	वैद्यक
सवितानारायण	कविप्रिया तथा बिहारी सतसई की टीका	
हजरत खूब मुहम्मद चिश्ती	भाव भेद	अलंकार
हमीर जी रतनू	यादव वंश वर्णन	ऐतिहासिक
	पिंगल प्रकार	छंद
	लखनपत पिंगल	,,
	हमीरनाममाला	कोष
हम्मीर रावल	हरियश नाममाला	,,
हमीर	हमीर पिंगल	छंद
हर्षदराय	राजनीति	राजनीति
हरिनाथ	अलंकार दर्पण	अलंकार
हीराचंद कानजी	पिंगलादर्श	छंद

प्रस्तुत तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि गुजरात के अनेक हिन्दी कवियों ने शास्त्र सम्मत काव्य के साथ साथ अनेक शास्त्रों से सम्बद्ध शास्त्रीय साहित्य भी लिखा है । शास्त्रीय साहित्य के विषय में हिन्दी में अभी शोध के लिए पर्याप्त अवकाश है, गुजरात में भी इस प्रकार के साहित्य की प्राप्ति की सम्भावनाओं को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता ।

३।२ शास्त्रीय काव्य

प्राचीन भारतीय काव्य शास्त्र की दृष्टि से काव्य शब्द से पूर्व इस प्रकार का कोई विशेषण जैसे शास्त्रीय काव्य आदि अनावश्यक ही माना जायेगा । परंतु आधुनिक काल में पाश्चात्य समीक्षा के प्रभाव के परिणाम स्वरूप यह आवश्यक हो गया है कि जिस काव्य की चर्चा हम करने जा रहे हैं उसे शास्त्रीय काव्य ही

कहा जाय, साथ ही उसकी परिभाषा भी निश्चित कर ली जाय। कारण संस्कृत काव्य शास्त्र के अनुसार तो स्वच्छंदतावादी और शास्त्रीयकाव्य (Romantic and Classical Poetry) के रूप में काव्य का वर्गीकरण नहीं किया जा सकता,[१] परन्तु आधुनिक काल में न केवल उक्त आधार पर समीक्षकों ने हिन्दी साहित्य की विभिन्न धाराओं का वर्गीकरण किया है परन्तु रीतिकालीन हिन्दी काव्य को शास्त्रीय तथा छायावादी काव्य को स्वच्छंदतावादी काव्य के रूप में स्वीकार भी कर लिया है।[२] १८वीं शताब्दी में यूरोप में साहित्य के विषय तथा विन्यास (Content and Form) में कुछ मूलभूत परिवर्तन होने लगे थे, जिनके परिणाम स्वरूप जो साहित्य १६वीं शताब्दी में अंग्रेजी में लिखा गया उसे ही मूलत: स्वच्छंदतावादी साहित्य कहा जाता था, अर्थात् रोमांटिसिज्म एक साहित्यिक आन्दोलन था जो आगे चल कर साहित्यिक समीक्षा का एक मान्य सिद्धान्त तथा साहित्य के वर्गीकरण का एक प्रमुख आधार मान लिया गया[३]। हिन्दी में पाश्चात्य साहित्य और समीक्षा के अनुकरण पर इस वाद विशेष को साहित्य और समीक्षा का आधार मान लिया गया है। परन्तु हिन्दी के आधुनिक साहित्य को छोड़ कर प्राचीन साहित्य को एकान्तिक रूप से न शुद्ध स्वच्छन्दतावादी-साहित्य कहा जा सकता है और न शास्त्रीय। आशय यह कि जिस अर्थ में आजकल शास्त्रीय तथा स्वच्छन्दतावादी साहित्य को हिन्दी में (पाश्चात्य साहित्य तथा समीक्षा के अनुकरण पर) समझा जाता है, उससे भिन्न अर्थ में यहां शास्त्रीय काव्य शब्द का प्रयोग किया गया है।

१- हिन्दी साहित्य कोष, पृ० २४६।

२- वही, पृ० २४६, ६७६।

३- वही, पृ० ६७६।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है मध्यकाल में हिन्दी ने संस्कृत जैसी सर्वाश्रियता विकसित कर ली थी, परिणाम स्वरूप एक ओर उसमें प्राकृत अपभ्रंश तथा अन्य लोकभाषाओं जैसी लौकिक काव्य धारा विकसित हो रही थी तथा दूसरी ओर संस्कृत तथा अरबी फारसी की शास्त्र निष्ठ काव्य परम्परा भी हिन्दी में उतरने लगी थी। संस्कृत की ओर हिन्दी भक्तिकाल में विशेष रूप से उन्मुख हो चली थी[१] तथा इसी समय में अरबी फारसी से भी हिन्दी का सम्बन्ध दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा था[२]। परन्तु इसका आशय यह नहीं है कि भक्ति तथा रीतिकाल से पूर्व हिन्दी में शास्त्रनिष्ठ काव्य की परंपरा थी ही नहीं। हिन्दी के आदि काल से उक्त दोनों प्रकार की काव्य धाराएं हिन्दी में चली आ रही हैं और आज भी जीवित हैं। आदि काल में बौद्ध सिद्धों, तथा नाथपंथी योगियों की रचना लोक साहित्य की भूमिका पर ही रहती है, जबकि जैन आचार्यों तथा राजाश्रित चारण कवियों की रचना बहुत कुछ शास्त्र सम्मत ही कही जायेगी। हेमचंद्राचार्य द्वारा अपने शब्दानुशासनम् में उद्धृत दोहे तथा पुष्पदंत आदि जैनकवियों तथा चंद आदि चारण कवियों की रचना संस्कृत काव्य शास्त्र की दृष्टि से काव्य कही जा सकती हैं। वस्तुत: जिस प्रकार इन कवियों की परंपरा के विकसित रूप में ही हिन्दी के रीतिकालीन कवियों को परिगणित किया जा सकता है उसी प्रकार बौद्ध सिद्धों तथा नाथ पंथी जोगियों की धारा के विकसित रूप में भक्तिकालीन संत तथा सूफी कवि तथा कुछ अंशों में वैष्णव कवियों को भी माना जा सकता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने बौद्ध सिद्धों तथा नाथपंथी जोगियों की रचनाओं को साम्प्रदायिक होने के कारण शुद्ध काव्य की कोटि में स्वीकृत नहीं किया है[३]। इसी मानदंड के आधार पर अनेक भक्तिकालीन कवियों को भी शुद्ध शास्त्रीय दृष्टि से कवि नहीं कहा जा सकता। सूर तुलसी के अपवाद के

१- बिहारी - आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० १५।

२- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २३२।

३- वही, पृ० २४।

साथ अधिकांश भक्ति कालीन कवि भक्त ही थे, उन्हें कवि कहना शास्त्र सम्मत नहीं। कबीर आदि संतों की महानता को सब प्रकार स्वीकार करते हुए भी उनकी रचनाओं को शुद्ध काव्य की परिभाषा में स्वीकृत नहीं किया जा सकता।[1] परन्तु सूर तुलसी आदि कुछ भक्त कवि अपनी काव्य प्रतिभा के कारण शुद्ध काव्य की शास्त्रीय मान्यताओं की सीमा से बाहर सिद्ध नहीं किये जा सकते। सूर तुलसी के काव्य में लोक तथा शास्त्र का अद्भुत काव्योचित समन्वय है। उनका काव्य काव्यशास्त्र की सीमाओं को विस्तार प्रदान अवश्य करता है, परन्तु काव्यशास्त्र को असत्य सिद्ध नहीं करता। आशय यह कि उनका काव्य काव्यशास्त्र का अन्धानुगामी न होते हुए भी शास्त्र विरुद्ध नहीं है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि आदि काल से हिन्दी में जो शास्त्र सम्मत काव्य धारा चली आ रही थी तथा जो अपभ्रंश के प्रभाव से अपने आप को पूर्णत: मुक्त और संस्कृत आदि अन्य शिष्ट काव्य धाराओं से पूर्णत: सम्बद्ध नहीं हो पायी थी वह भक्ति काल में आकर अपभ्रंश की परंपरा से किंचित् विलग हो संस्कृत आदि अन्य शिष्ट काव्य धाराओं के निकट आने लगी थी तथा रीतिकाल में आ कर हिन्दी काव्य धारा उक्त सभी परंपराओं को संतुलित तथा समन्वित रूप में आत्मसात् कर अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व विकसित कर सकी। डा० नगेन्द्र के शब्दों में रीति कविता अपने शुद्ध रूप में न तो राजाओं और सैनिकों को उत्साहित करने का साधन थी न धार्मिक प्रचार अथवा भक्ति का माध्यम थी, न सामाजिक अथवा राजनैतिक सुधार की परिचायिका ही। काव्य कला का अपना स्वतंत्र महत्व था - उसकी साधना उसी के अपने निमित्त की जाती थी, वह अपना साध्य आप थी।[2]

प्रस्तुत संदर्भ में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि सामान्यत: हिन्दी के इतिहास तथा समीक्षा ग्रंथों में जिसे रीति काव्य की संज्ञा से अभिहित किया

१- हिन्दी साहित्य का अतीत (द्वितीय भाग), अनुवचन - आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० ५।

२-रीतिकाव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र, पृ० १३३।

जाता है उसी को यहां कुछ कारणों से शास्त्रीय काव्य कहा जा रहा है। सामान्यत: रीति काव्य का अर्थ हिन्दी में वह काव्य होता है जो अलंकार, रस, नायिका भेद, गुण, ध्वनि, वक्रोक्ति आदि काव्य के सिद्धान्तों के आधार पर या इनको ध्यान में रख कर लिखा जाय[१]। रीति शब्द का प्रयोग चिन्तामणि के समय से होता आ रहा है,[२] परन्तु प्राय: इस शब्द का प्रयोग किसी अन्य विशेषण जैसे कवि रीति, छंदरीति, मुक्तक रीति आदि के साथ विशेष्य रूप में ही हुआ है[३]। रीतिकाव्य में विशेषण के समान इसका प्रयोग आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से पूर्व नहीं हुआ[४]। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी रीतिकाल नाम हिन्दी के इतिहास से एक युग विशेष के लिए किया है। उस युग के समग्र काव्य के लिए रीतिकाव्य शब्द का व्यवहार नहीं किया। आशय यह कि हिन्दी में रीतिकाव्य शब्द यद्यपि आज पारिभाषिक अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है, परन्तु उसके पारिभाषिक अर्थ के लिए कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है। साथ ही रीतिकाव्य शब्द रीतिकालीन समग्र काव्य की चेतना का प्रतिनिधित्व नहीं कर पाता। इसीलिए आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस युग के लिए नवीन नाम शृंगार काल तथा इस युग के काव्य के लिए शृंगार काव्य नाम प्रस्तावित किया है[५]। परंतु यह नामकरण भी केवल तथाकथित रीति काल को दृष्टि में रखकर ही किया गया है। समग्र हिन्दी साहित्य को दृष्टि में रख कर नहीं। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा मान्य शृंगार काल से पूर्व भी शास्त्र सम्मत शृंगार काव्य हिन्दी तथा संस्कृत आदि भाषाओं में मिलता अवश्य है। साथ ही शृंगार काव्य के अतिरिक्त अन्य प्रकार का काव्य भी हिन्दी में तथाकथित रीतिकाल तथा उससे पूर्व भी शास्त्र सम्मत रूप में मिलता है, उदाहरणार्थ हिन्दी

१- हिन्दी साहित्य कोश - सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा आदि, पृ० ६६५।

२- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास (षष्ठ भाग) - डा० नगेन्द्र, पृ० १७६।

३- तुलनीय है, वही, पृ० १८०।

४- वही।

५- घनानंद ग्रंथावली - आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० १०।

के आदि काल में वीर काव्य, प्रेमकाव्य तथा आख्यान काव्य (जिन्हें शास्त्र सम्मत काव्य कहा जा सकता है चाहे उन्हें संस्कृत के काव्य रूप खंड काव्य, महाकाव्य आदि न कहा जा सके) आदि के साथ साथ नीति काव्य भी मिलता है । आशय यह कि रीतिकाल की परिसीमा में ही हिन्दी में शास्त्र सम्मत काव्य लेखन की परंपरा प्रारम्भ नहीं हुई उससे पूर्व भी इस प्रकार की परंपरा थी अवश्य । रीतिकाल में आ कर यह परंपरा प्रमुख हो गयी थी । यह सत्य है कि इस काल में आ कर हिन्दी के कवि और काव्य के स्वतंत्र रूप की प्रतिष्ठा हुई[1], परन्तु इस युग से पूर्व भी शुद्ध असम्प्रदायिक लौकिक कवि तथा काव्य हिन्दी के इतिहास के आदि और भक्ति काल में भी मिलते हैं, जिन्हें भारतीय काव्य शास्त्र की दृष्टि से कवि और काव्य कहा जा सकता है । इसलिए इस प्रकार के शास्त्र सम्मत काव्य को यहां शास्त्रीय काव्य कहा जा रहा है जो किसी रस, विषय, देश, काल, आदि की सीमाओं से आबद्ध नहीं है । आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने जिस दृष्टि से रीतिकालीन हिन्दी साहित्य को शुद्ध साहित्य कहा है[2], उसी दृष्टि से यहां हिन्दी के समूचे शास्त्र सम्मत काव्य साहित्य को शास्त्रीय काव्य कहा जा रहा है, जो विशेष रूप से रीतिकाल में ही लिखा गया है और विशेष रूप से शृंगार परक ही है । परंतु रीति काव्य, शृंगार काव्य, या शुद्ध काव्य की अपेक्षा शास्त्रीय काव्य आधुनिक काल के स्वच्छन्दतावादी आदि काव्यों से पूर्व के समूचे हिन्दी काव्य की एक व्यापक परंपरा को सरलता से अभिहित कर सकता है, जो किसी एक विशेष काल या विषय आदि से आबद्ध नहीं है । साथ ही जो शास्त्र का अन्धानुकरण किए बिना भी शास्त्रीय बना रहता है[3] । आशय यह कि जिसे आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने रीतिमुक्त काव्य कहा है उसे भी यहां शास्त्रीय काव्य ही कहा जा रहा है, ..

१- हिन्दी रीति साहित्य - डा० भगीरथ मिश्र, पृ० ४ ।

२- हिन्दी साहित्य का अतीत (द्वितीय भाग) अनुवचन, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० ६ ।

३- घनानंद ग्रंथावली - आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० १६ ।

क्योंकि रीतिमुक्त कवियों ने यद्यपि काव्य शास्त्र को दृष्टि में रख कर काव्य रचना नहीं की, तथापि उनका काव्य काव्य शास्त्र की मूलभूत मान्यताओं, मर्यादाओं तथा मानदंडों की उपेक्षा नहीं करता । रीतिमुक्त काव्य को शास्त्रविरुद्ध नहीं कहा जा सकता । जिस प्रकार सूर तुलसी की कविता काव्य शास्त्र के मूल सिद्धान्तों के विरुद्ध न होते हुए तथा उनका अन्धानुकरण किए बिना ही काव्य शास्त्र के सिद्धान्तों की नवीन व्याख्या तथा नवीन सिद्धान्तों की उद्भावना की शतश: सम्भावना प्रस्तुत करती है, उसी प्रकार रीतिमुक्त कवियों की कविता भी स्वकीय मौलिकता के कारण पूर्णत: शास्त्रानुगामी न होते हुए भी, शास्त्र-अविरुद्ध होने के कारण, शास्त्र सम्मत ही कही जायेगी । अत: इस प्रकार की कविता को भी शास्त्रीय काव्य के अन्तर्गत स्वीकृत किया जा रहा है ।

हिन्दी की एक विशिष्ट काव्य परम्परा के लिए शास्त्रीय काव्य परंपरा कहना गुजरात की हिन्दी काव्य परंपरा के प्रस्तावित वर्गीकरण की दृष्टि से भी तर्क संगत है । धार्मिक मतवादों से मुक्त, अप्रचारात्मक समूचा शुद्ध साहित्य जो प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्र की दृष्टि से काव्य कहा जा सकता है उसे ही यहां शास्त्रीय काव्य कहा जा रहा है ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है हिन्दी में आदि से एक ओर जहां शास्त्र सम्मत काव्य लेखन की परंपरा मिलती है वहीं दूसरी ओर लोकोन्मुख लोक साहित्य सम काव्य की परंपरा मिलती है । प्रथम का सम्बन्ध प्रारंभ से ही शिष्ट समाज तथा राज दरबारों से रहा है, जबकि द्वितीय का सामान्य समाज से । हिन्दी के प्रारंभिक समय में भारत की राजनैतिक परिस्थिति अशान्तिपूर्ण थी[१] । मुसलमानों के आगमन से तो एक प्रकार से सांस्कृतिक उथल पुथल हुई है, परन्तु उससे पूर्व भी राजपूत राजाओं का परस्पर कलह तथा विग्रह हिन्दी के राजाश्रय में शिष्ट भाषा

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३४ ।

के रूप में विकसित होने में बाधक सिद्ध हुआ । पठान शासकों ने हिन्दी कवियों को राजाश्रय प्रदान नहीं किया था[1], इसलिए केन्द्र में हिन्दी वह स्थान न प्राप्त कर सकी जो उसे अकबर के समय में आगे चल कर प्राप्त हुआ था[2]। फिर भी अकबर से पूर्व जिन चारण कवियों को राजाश्रय प्राप्त हो गया था उन की रचनाओं में शास्त्रीयता की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है, जो उनके समकालीन सिद्धों और जोगियों की रचनाओं में दृष्टिगोचर नहीं होती । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन कवियों की साम्प्रदायिक रचनाओं को, इसीलिए शुद्ध साहित्य की कोटि में नहीं माना[2], जबकि आचार्य हेमचन्द्र, सोमप्रभ सूरि, विद्याधर तथा वीर गाथाकालीन चारण कवियों की रचनाओं को शुद्ध साहित्य की कोटि में स्वीकार कर लिया । यहां यह तथ्य विशेष रूप से ज्ञातव्य है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा मान्य वीरगाथा काल के अधिकांश कवि राजाश्रित थे, तथा उनकी रचनाओं को शास्त्रीय दृष्टि से शुद्ध काव्य कहा जा सकता है[3]। भक्तिकाल में सूफी तथा वैष्णव कवियों के समानान्तर शुद्ध शास्त्रीय काव्य परंपरा पुन: प्रतिष्ठापित हो रही थी, जो पठानकालीन अशांति तथा विप्लव के कारण बीच में कुछ दब सी गयी थी । अकबर के दरबारी कवि, अब्दुर्रहीम खानखाना, महाराज टोडरमल, महाराज बीरबल, गंग, मनोहर कवि, बलभद्र मिश्र, केशवदास आदि अनेक ऐसे कवि हुए हैं जिनकी रचनाओं को शास्त्रीय रचना कहा जा सकता है और ये सभी कवि राजदरबार या शिष्ट समाज से सम्बद्ध थे । इसलिए इनकी रचनाओं में जन जीवन के चित्रण, संतों जैसे उपदेश या भक्ति भावना की अपेक्षा करना इन कवियों से अयथार्थ की कामना करना है , जो इन कवियों में आधुनिक यथार्थवादियों के समान सम्भव नहीं । इन कवियों ने अपने जीवन तथा अपने समाज का यथार्थ चित्रण किया है, वह आज के समाज के लिए प्रेरणाप्रद भले न हो, जो कुछ उन्होंने लिखा है, वह सत्य है । उस युग का यथार्थ है । साथ ही भारतीय काव्य शास्त्र की दृष्टि से

१- मध्ययुग का संक्षिप्त इतिहास - डा० ईश्वरीप्रसाद, पृ० २५३ ।

२- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २४ ।

३- तुलनीय , वही, पृ०२९-३०।

वह शुद्ध काव्य है । लोक साहित्य की भूमिका से ऊपर उठ कर हिन्दी साहित्य इस युग में शुद्ध शास्त्रीय काव्य के रूप में प्रतिष्ठापित हुआ, जिसकी परंपरा रीतिकाल में अन्य सभी काव्य परंपराओं की तुलना में प्रधानतम रही है ।[1]

आशय यह कि हिन्दी में प्रारंभ से ही शास्त्रीय काव्य की परंपरा मिलती है जो रीतिकाल में विशेष रूप से विकसित हुई, परंतु इसके साथ ही आदिकालीन तथा भक्तिकालीन अन्य काव्य परंपराएं भी हिन्दी में चलती रही ।[2] परंतु इन परंपराओं पर भी शास्त्रीय काव्य की छाप इस युग में स्पष्ट देखी जा सकती है ।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में हिन्दी की उक्त शास्त्रीय काव्य परंपरा का विशेष स्थान है, क्योंकि संस्कृत के पश्चात केवल हिन्दी में इस प्रकार की सुविकसित परंपरा मिलती है । डा० नगेन्द्र ने लिखा है कि भारतीय भाषाओं में अन्यत्र कहीं भी इस प्रकार की एक स्वतंत्र काव्य धारा प्रवाहित नहीं हुई ।[3]

यह कहा जा चुका है कि भारत के प्राय: सभी अहिन्दी भाषी प्रान्तों में हिन्दी की काव्य परंपराएं मिलती हैं, परंतु उन सब में केवल गुजरात प्रदेश ही ऐसा है जहां न केवल हिन्दी की सर्वाधिक समृद्ध परम्परा मिलती है, वरन् हिन्दी की शास्त्रीय काव्य की परंपरा भी पूर्ण विकसित रूप में मिलती है, जो केवल हिन्दी भाषी प्रदेश तथा हिन्दी भाषा की ही एक विशेषता है । आशय यह कि भारत की सभी भाषाओं में धार्मिक साहित्य, जिसे शास्त्रीय दृष्टि से काव्य नहीं कहा जा सकता, प्रारंभ से आधुनिक काल के प्रारंभ से पूर्व तक प्रभूत मात्रा में मिलता है । परन्तु शास्त्रीय काव्य संस्कृत आदि प्राचीन परिनिष्ठित भाषाओं

१- तुलनीय है हिन्दी साहित्य का अतीत (द्वितीय भाग), अनुवचन - आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ५-७ ।

२- हिन्दी रीति साहित्य - डा० भगीरथ मिश्र, पृ० १४-१५ ।

३- हिन्दी रीति परंपरा के प्रमुख आचार्य - भूमिका - डा० नगेन्द्र, डा० सत्यदेव चौधरी, पृ० १ ।

तथा तामिल आदि एक दो द्रविड भाषाओं को छोड़ कर हिन्दीतर भारतीय भाषाओं में नहीं मिलता । हिन्दी भाषा में जो साहित्य अहिन्दी भाषी प्रदेशों में लिखा गया है, वह गुजरात को छोड़कर सर्वत्र प्राय: धार्मिक ही है । गुजराती में हिन्दी के समान प्राचीन काल में शास्त्रीय साहित्य नहीं मिलता, परन्तु गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा में प्राचीन काल से ही शास्त्रीय साहित्य मिलने लगता है । गुजरात में इस प्रकार गुजराती भाषा से भिन्न हिन्दी में जो शास्त्रीय काव्य लिखा गया है, उसके प्राय: वे ही कारण हैं जो गुजरात में लिखे गये हिन्दी के शास्त्रीय साहित्य के विषय में लिखते समय बताये जा चुके हैं । अत: सम्प्रति उन कारणों का यहां पुनर्कथन न कर गुजरात में लिखे गये हिन्दी के शास्त्रीय काव्य का संक्षिप्त परिचय यहां प्रस्तुत किया जा रहा है ।

पूर्व विवेचन से स्पष्ट है कि रीतिकाल के प्रारंभ होने से पूर्व ही हिन्दी में शास्त्रीय काव्य लेखन की परंपरा स्थापित हो चुकी थी, ठीक इसी प्रकार गुजरात में भी रीतिकाल की प्रारंभ तिथि से पूर्व ही शास्त्रीय काव्य लेखन प्रारंभ हो जाता है । पहले कहा जा चुका है कि अब तक जो सामग्री प्रकाश में आयी है उसके अनुसार सन् १५३६ के आसपास अहमदाबाद के मुसलमान कवि हजरत खूब मुहम्मद चिश्ती द्वारा लिखित 'भावभेद नामक ग्रंथ गुजरात में लिखा गया हिन्दी का प्रथम शास्त्र ग्रंथ माना जा सकता है, जिससे यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि इस समय से पूर्व ही गुजरात में हिन्दी के शास्त्रीय काव्य की परंपरा प्रारम्भ हो गयी होगी । सन् १४५५ में बड़ौदा के किसी ब्राह्मण परमानन्द या परमाणंद द्वारा लिखित ओषा हरण नामक रचना का पता चला है । इस रचना को शुद्ध शास्त्रीय रचना तो नहीं कहा जा सकता है परन्तु किसी धार्मिक सम्प्रदाय विशेष से असम्बद्ध होने के कारण तथा शुद्ध साहित्यिक प्रयोजन से ही लिखित होने के कारण, इसे शुद्ध साहित्यिक कृति अवश्य माना जा सकता है । शास्त्रीय काव्य के विकास क्रम का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस प्रकार का साहित्य शुद्ध साहित्य के विकास की एक अवस्था का परिचायक ही होता है । आशय यह कि शुद्ध साहित्यिक प्रयोजन से लिखा गया साहित्य जब शास्त्रीय मान्यताओं के अनुरूप परिष्कार तथा औदात्य प्राप्त कर लेता है, तभी

शास्त्रीय काव्य कहलाता है। गुजरात के हिन्दी काव्य के विकास में यह तथ्य स्पष्टत: देखा जा सकता है। अर्थात् उक्त परमानन्द जैसे कवियों द्वारा शुद्ध साहित्यिक प्रयोजनों से प्रेरित हो कर हिन्दी में काव्य रचना प्रारंभ हुई बाद में काव्य शास्त्र के व्यापक प्रचार तथा प्रणयन के कारण उक्त शुद्ध साहित्य शास्त्रीय काव्य की भूमिकाको प्राप्त कर सका।

सन् १४५५ में जिस प्रकार परमानन्द ने पौराणिक आख्यान पर 'ओषा हरण' नामक शुद्ध साहित्यिक कृति प्रस्तुत की उसी प्रकार १५१८ के आसपास नरसासुत गणपति ने प्रसिद्ध लोक आख्यान के आधार पर आमोद में माधवानल काम कंदला नामक रचना लिखी है। गुजराती भाषा में इस प्रकार के आख्यान काव्य प्रभुत मात्रा में मिलते हैं।[१] शामल भट्ट तथा प्रेमानन्द गुजराती के प्रसिद्ध लेखक हैं जिन्होंने अनेक आख्यान काव्य लिखे हैं। गुजरात के अनेक कवियों ने हिन्दी में भी इस प्रकार के अनेक आख्यान काव्य लिखे हैं। १६वीं शताब्दी में ही नरमियां नाम के जूनागढ़ के हिन्दी कवि मिलते हैं, जिनकी ऐसी स्फुट रचना मिली है, जिन्हें शुद्ध शास्त्रीय काव्य की कोटि में स्वीकृत किया जा सकता है। परन्तु वास्तविक रूप में ईसरदास बारोट को गुजरात की हिन्दी के शास्त्रीय काव्य को परम्परा का प्रथम कवि मानना चाहिए। ईसरदास बारोट जाति के चारण थे, तथा जाम नगर के जाम रावल के आश्रित थे। इन्होंने हरिरस, देव्यायण, निन्दा स्तुति, रास कैलास, सभापर्व आदि अनेक रचनाएं की हैं, जिनकी शैली विशुद्ध शास्त्रीय है। इन्होंने प्रधानत: पौराणिक तथा धार्मिक विषयों पर ही रचना की है तथा संत कवियों के समान सबद, वाणी तथा भजन आदि भी लिखे, परन्तु चारण होने के कारण, इन्हें काव्य शास्त्र तथा पिंगल का अच्छा ज्ञान था, अत: इनकी रचनाएं शास्त्रीय दृष्टि से शुद्ध हैं। ईसरदास बारोट के विषय में प्रसिद्ध है कि यद्यपि ये राजाश्रित कवि थे, परन्तु इन्होंने राज प्रशस्ति में कुछ भी नहीं लिखा है। प्रकृति से ये संत थे, अत: इनकी अधिकांश रचनाएं धार्मिक हैं।

१- Gujarat and its Literature, Ch. V & VII, p.

१७ वीं शताब्दी में गुजरात में हिन्दी के शास्त्रीय काव्य की परंपरा और अधिक स्पष्ट होने लगती है । इस शताब्दी में अनेक ऐसे कवि हुए हैं जो अपने कृतित्व में हिन्दी के रीतिकालीन कवियों से अत्यधिक समान हैं । अहमदाबाद के कृष्णराम भट्ट, जो जयपुर के महाराजा के आश्रित थे तथा प्रसिद्ध वैद्य थे, इस परंपरा के अच्छे कवि थे । मालवा निवासी गुजराती नागर ब्राह्मण की अनेक स्फुट रचनायें शास्त्रीय शैली में मिलती हैं । अंकलेश्वर के कायस्थ कवि माधवदास ने १६१६ सन् में महाभारत का आदि पर्व इसी शैली में लिखा है । अहमदाबाद के रघुराम जी (समय १६४४ के आसपास) ने सभासार नामक रचना की है जो शास्त्री काव्य का सुन्दर उदाहरण है। इन्होंने रामाश्वमेध तथा लवकुश आख्यान नामक रचना की हैं जो पूर्वोक्त गुजरात की आख्यान काव्य परंपरा के शास्त्रीय परिष्कार के परिणाम स्वरूप शास्त्रीय काव्य रूप के विकास की प्रमाण मानी जा सकती हैं । इस काल में शास्त्रीय शैली का प्रसार गुजरात में हिन्दी भाषी प्रदेश के समान ही इतना अधिक हो गया था कि जैन आदि धार्मिक सम्प्रदायों से सम्बद्ध कवियों की रचना शैली भी शुद्ध शास्त्रीय हो गयी थी । आशय यह कि जिस प्रकार हिन्दी भाषी प्रदेश में सूर तुलसी के समय के आसपास (संस्कृत भाषा तथा साहित्य के साथ हिन्दी का सम्बन्ध अधिक निकट का हो जाने के कारण) हिन्दी के धार्मिक सम्प्रदायों से सम्बद्ध कवियों की रचना शैली शुद्ध शास्त्रीय तथा कवियों का दृष्टिकोण भी विशुद्ध धार्मिक न रह कर बहुत कुछ साहित्यिक हो गया था, उसी प्रकार गुजरात में भी अनेक धार्मिक कवियों की रचनाएं भी शास्त्रीय काव्य की दृष्टि से लिखी गयी हैं । सन् १६७६ के आसपास केशवदास नामक जैन कवि की 'केशवदास बावनी' रचना इसी प्रकार की रचना है । इसी समय के आसपास जैन कवि आचार्य केशव की 'सवैया केशव बावनी' तथा 'छप्पय केशव बावनी' भी इसी प्रकार की शास्त्रीय काव्य कृतियां हैं । सन् १६७४ में जैन कवि जिन रंग तथा जिनहर्ष की रचनाएं भी इसी कोटि में रखी जा सकती हैं । शास्त्रीय काव्य लिखनेवाले कवियों में इस शताब्दी में धनराज, धर्मसिंह, पुहकर, भीखजन, विश्वनाथ जानी, श्रीपति आदि अन्य कवियों का नाम भी लिया जा सकता है ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकाल की जो समय सीमा (सं० १७००-१९००)[१] मानी है, लगभग वही समय सीमा गुजरात की हिन्दी की शास्त्रीय काव्य परम्परा की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। रीतिकाल का परिचय देते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि हिन्दी काव्य अब पूर्ण प्रौढ़ता को पहुंच गया था,[२] गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा के लिए भी यही कहा जा सकता है। १८ वीं और १९ वीं शताब्दी में न केवल गुजरात में अन्य शताब्दियों की तुलना में सर्वाधिक कवि हुए हैं,[३] वरन् साहित्यिक दृष्टि से भी इस युग का सर्वोत्कृष्ट साहित्य शास्त्रीय काव्य है। राजाश्रय प्राप्त कवियों की संख्या भी इस युग में सर्वाधिक है,[४] साथ ही इस युग में गुजरात, सौराष्ट्र तथा कच्छ के अनेक राजा महाराजाओं ने भी स्वयं सुन्दर शास्त्रीय साहित्य तथा काव्य हिन्दी में लिखकर गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा के विकास में सक्रिय योगदान दिया है[५]।

१८ वीं शताब्दी में पच्चीस से तीस तक ऐसे कवि गुजरात में हुए हैं जिन्होंने हिन्दी में शास्त्रीय काव्य लिखा है। शास्त्रीय शैली में आख्यान काव्य लिखने वाले कवियों में लींमड़ी के राजा हरभम जी के आश्रित अमरसिंह बारोट, गोपालदास, प्रेमानन्द स्वामी, आदि कवियों का नाम उल्लेखनीय है। अनेक जैन कवियों ने इस शताब्दी में शास्त्रीय ग्रंथों के अतिरिक्त शास्त्रीय काव्य की स्फुट संग्रहात्मक तथा प्रबन्धात्मक रचनाएं की हैं/कनक-कुशल, कुंवर कुशल, जीवनविजय, मयाचन्द आदि ऐसे ही जैन कवि हैं। प्रवीण सागर जैसा अनूठा प्रबन्ध काव्य भी इसी समय में लिखा गया है, जिसके मूल कर्ता राजकोट के महाराज कुमार महेरामण सिंह माने

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ० २२३।
२- वही, पृ० २२५।
३- देखिए अध्याय - द्वितीय, पृ०६४ (ग्राफ)
४- वही, पृ० ६४।
५- देखिए परिशिष्ट द्वितीय - ब ।

जाते हैं, परंतु इनके साथ इनके मित्र तथा आश्रित कवि जीवन विजय, जैसा लांगा, पिंगलशी गढ़वी, आदि का भी इस रचना की पूर्ति में योग माना जाता है। शास्त्रीय ग्रन्थों के लेखन के साथ साथ स्फुट शास्त्रीय काव्य रचना करने वाले कवियों में आदितराम केवलराम, कनक कुशल, कुंवर कुशल, केवलराम, गंजन, जसुराम, जैसा लांगा, दयाराम, दलपत, दलपतराय, बंशीधर, बन्नु बारोट, बीसाजी, महासिंह सेवक, माणिक कविराज, आदि कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं। आशय यह कि इस शताब्दि में गुजरात में हिन्दी की शास्त्रीय काव्य परम्परा पूर्ण रूप से विकसित हो गयी थी, जिसके परिणाम स्वरूप गुजरात में शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से श्रेष्ठ साहित्य हिन्दी में लिखा गया। शुद्ध शास्त्रीय काव्य की दृष्टि से ही नहीं वरन् गुजरात की हिन्दी की सामान्य काव्य परम्परा की व्यापकता, लोकप्रियता, तथा वैविध्य एवं साहित्यिक उत्कृष्टता आदि की दृष्टियों से भी यह शताब्दी अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि १६ वीं शताब्दी में गुजरात की हिन्दी काव्य परंपरा ने अपने विकास की चरम सीमा प्राप्त कर ली थी।[१] इस शताब्दी में पचास साठ कवि ऐसे गुजरात में मिल जाते हैं जिन्होंने शास्त्रीय काव्य लिखा है। अब तक की शोधों के परिणाम स्वरूप जिन कवियों के विषय में पूरी पूरी जानकारी प्राप्त हुई है उनमें से आठ वैष्णव, तीन सूफी, एक स्वामी नारायणी इक्कीस संत और छै जैन कवियों को छोड़ कर शेष अधिकांश कवियों ने शुद्ध शास्त्रीय काव्य लिखा है।[२] शास्त्रीय काव्येतर साहित्य के उक्त कवियों में भी अनेक कवि ऐसे हैं, जिन्हें शास्त्रीय काव्य के कवियों के रूप में स्वीकार किया जा सकता है; क्योंकि इन में से अनेक कवि ऐसे हैं जिनका विषय ही विशुद्ध धार्मिक है तथा इनका मूल प्रयोजन काव्य रचना करना न हो कर, अपनी धार्मिक भावनाओं को अभिव्यक्त करना अवश्य है,

---

१- देखिए, अध्याय द्वितीय , पृ०६४।

२- ,, परिशिष्ट द्वितीय - अ ।

परंतु उनकी शैली आदि विशुद्ध साहित्यिक है । अत: ऐसे कवियों को भी शास्त्रीय काव्य लिखने वाले कवियों की कोटि में स्वीकार कर लेना युक्ति युक्त ही कहा जायेगा । वस्तुत: इस समय कुछ संत तथा सूफी कवियों को छोड़ कर शेष सभी कवियों की रचना शैली आदि विशुद्ध शास्त्रीय ही है । अत: यह कहा जा सकता है कि इस शताब्दि में सामान्य रूप से तो गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा अपने विकास की चरम सीमा को प्राप्त हुई ही, परन्तु शास्त्रीय काव्य की परंपरा विशेष रूप से, अन्य सभी धाराओं की तुलना में विकसित हुई । आशय यह कि १९वीं शताब्दी गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा के लिए सामान्य रूप से तथा शास्त्रीय काव्य की परंपरा के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है ।

१९वीं शताब्दी में जूनागढ़, लखतर, मूली, मिटारा, भुज, ध्रांगध्रा, गोंडल, भावनगर, राजकोट आदि गुजरात, सौराष्ट्र तथा कच्छ की छोटी बड़ी रियासतों में चारण तथा चारणेतर कवियों को राजाश्रय प्राप्त था[1], तथा ध्रांगध्रा, लाकर, ध्रोल, लखतर, लाखर, भुज, पालीताणा, बरल आदि रियासतों के राजा महाराजा स्वयं हिन्दी के शास्त्रीय काव्य की परंपरा को विकसित कर रहे थे[2]। वैसे भी शास्त्रीय काव्य के पठन पाठन की परम्परा इस समय गुजरात में इतनी अधिक सुस्थापित हो चुकी थी कि इस समय हिन्दी के काव्य ज्ञान से शून्य व्यक्ति गवार गिना जाता था[3]। आदितराम, उन्नड़ जी, केशव अयाची, केसरी सिंह, गोपाल जादेव, तुलजाराम, दयाशंकर शामजी त्रिपाठी, दलपतराम, पाताभाई, पिंगलसिंह पाता भाई, रणमल अदाभाई, श्यामल जी जयसिंह, हीराचंद कानजी आदि कवियों को इस शताब्दी के प्रमुख कवि माना जा सकता है ।

१- अध्याय द्वितीय, पृ० ४६-४७।

२- परिशिष्ट, द्वितीय - व ।

३- गुजराती और हिन्दी साहित्य मां आपेलो फाडो - डाह्या भाई पीताम्बरदास देरासरी, पृ० २ ।

२० वीं शताब्दी में जिस प्रकार हिन्दी भाषी प्रदेश में प्राचीन शास्त्रीय काव्य की परम्परा प्राय: समाप्त हो जाती है और आधुनिक काव्य, जिसे पूर्णत: शास्त्रीय काव्य नहीं कहा जा सकता, हिन्दी में सुस्थापित हो जाता है, उसी प्रकार गुजरात में भी हिन्दी की मध्यकालीन शास्त्रीय काव्य की परम्परा शनै: शनै: समाप्त होने लगती है और आधुनिक काव्य का सूत्रपात भी होने लगता है। इन्द्र बसावड़ा जैसे आधुनिक शैली के गद्यकार लेखकों के समान चमन जैसे आधुनिक कवि भी गुजरात में हैं। गुजरात की पुरानी पीढ़ी आज भी प्राचीन ब्रजभाषा के शास्त्रीय काव्य को ही शुद्ध काव्य मानती है तथा उसी के अनुसार अब भी अनेक कवि काव्य रचना में प्रवृत्त हैं। प्राचीन परिपाटी के कवियों में खेतदान जी, गंगासुत, जसकरणजी, दुलाभाई काग, दुलेराय काराणी, दानाभाई महातम भाई, बैराभाई कविराज तथा हर्षदराय आदि के नामों का उल्लेख किया जा सकता है। आशय यह कि वर्तमान शताब्दी में गुजरात में हिन्दी काव्य की प्राचीन परम्परा नवीन रूप ले रही है, इस संक्रमण काल में भविष्य की सुनिश्चित कल्पना नहीं की जा सकती। साथ ही गोविन्द गिल्ला भाई के अध्ययन के लिए गुजरात की शास्त्रीय साहित्य तथा शास्त्रीय काव्य की परंपरा का सिंहावलोकन मात्र ही अपेक्षित है।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गुजरात में प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक हिन्दी के शास्त्रीय साहित्य तथा काव्य के लेखन की सुदीर्घ तथा समृद्ध परम्परा मिलती है। काव्य शास्त्र के अतिरिक्त जिस प्रकार अन्य अनेक शास्त्रों पर गुजरात में हिन्दी के कवियों ने अनेक ग्रंथ लिखे हैं, उसी प्रकार अनेक विषयों (Contents) तथा विन्यासों (Forms) की दृष्टि से सम्पन्न यहां हिन्दी में शास्त्रीय काव्य लिखा गया है।

उपसंहार

४। गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा और गोविन्द गिल्ला भाई

गोविन्द गिल्लाभाई के कृतित्व एवं उनकी कृतियों के संक्षिप्त परिचय एवं सिंहावलोकन मात्र से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि गुजराती भाषा और साहित्य के साथ उनका विशेष सम्बन्ध नहीं था। यद्यपि गोविन्द गिल्लाभाई

मूलत: गुजराती भाषी थे तथा उन्होंने प्रारम्भ में कुछ रचना गुजराती में ही की थी,[१] परन्तु कवि कर्म के विषय में सचेत होने के समय से ही उन्होंने न केवल हिन्दी में ही लिखा, वरन् हिन्दी के शास्त्रीय साहित्य तथा काव्य का गहन अध्ययन तथा तद् विषयक शोध कार्य भी किया । गोविन्द गिल्लाभाई के उक्त कृतित्व की मूल प्रेरणा वस्तुत: गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा में ही खोजी जा सकती है । हिन्दी भाषी प्रदेश की यात्रा कई बार गोविन्द गिल्ला भाई नेकी थी, परन्तु इन यात्राओं के पूर्व ही न केवल, गोविन्द गिल्लाभाई, हिन्दी में लिखना प्रारम्भ कर चुके थे वरन् गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा में अपना स्थान बना चुके थे तथा हिन्दी भाषी प्रदेश के अनेक कवि तथा समालोचकों के बीच भी जाने पहिचाने जाने लगे थे ।

गोविन्द गिल्लाभाई का समूचा काव्य साहित्य शास्त्रीय शैली में लिखा गया है, साथ ही अनेक शास्त्रीय ग्रंथ भी इन्होंने लिखे हैं । इनके कृतित्व के मूल में किसी प्रकार का असाहित्यिक प्रयोजन नहीं देखा जा सकता । अत: गोविन्द गिल्लाभाई को गुजरात की लौकिक अथवा शुद्ध साहित्य की दोनों धाराओं, शास्त्रीय काव्य और शास्त्रीय साहित्य की परम्परा का अन्तिम प्रौढ़ प्रतिनिधि माना जा सकता है । गोविन्द गिल्ला भाई हिन्दी के रीतिकाल तथा आधुनिक काल के संधि काल में उत्पन्न हुए थे, अत: उनमें उक्त दोनों कालों की अनेक विशेषताएं एक साथ मिलती हैं/ परन्तु इनके समकालीन अन्य अनेक कवियों के समान ही इनमें आधुनिकता की अपेक्षा प्राचीनता अधिक दृष्टिगोचर होती है । मिश्रबंधुओं के समान गोविन्द गिल्लाभाई ने भी कुछ समीक्षा तथा हिन्दी के प्राचीन साहित्य के सम्बन्ध में शोध कार्य किया है, परन्तु मूलत: वे रीतिकालीन हिन्दी के आचार्यों के समान शास्त्रीय ग्रंथ और शास्त्रीय काव्य लिखते रहे हैं । अत: उन्हें रीतिकालीन कवियों तथा आचार्यों की परम्परा में ही स्वीकार करना चाहिए, जिसे गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा की दृष्टि में रखते हुए लौकिक काव्यधारा कहा गया है तथा शास्त्रीय साहित्य तथा काव्य के रूप में वर्गीकृत किया है । आशय यह कि गोविन्द गिल्ला भाई गुजरात की हिन्दी काव्य परंपरा की शास्त्रीय साहित्य तथा शास्त्रीय काव्य धारा के अन्तिम प्रौढ़ प्रतिनिधि कवि माने जा सकते हैं ।

१- गोविन्द ग्रंथ माला (प्रथम भाग) उपोद्घात -गोविन्द गिल्लाभाई, पृ० २० ।